आंबेडकर पथ

–प्रो. कन्हैया त्रिपाठी

सारांशः

अतीत जिस प्रकार हमसे बंधा हुआ है, उसे हमारे महापुरुषों ने अपने जीवन में प्रेरणा का स्रोत बनाया। डॉ. आंबेडकर उनमें से एक हैं। उन्होंने वर्तमान को सहेजने और भविष्य को संवारने में अतीत का अध्ययन किया और वह अपने जीवन में निर्णायक नतीजे पर भी पहुँचते हैं। इस प्रपत्र में डॉ. आंबेडकर के जीवन सूत्रों की भूमिका पर विचार किया गया है जो हमारे लिए आज आंबेडकर पथ के रूप में उपस्थित हैं। डॉ. आंबेडकर के जीवन के आदर्शों और उनकी खुद की आत्मस्वीकारोक्ति पर भी इस प्रपत्र में विमर्श किया गया है। इस शोध-पत्र में यह भी पड़ताल की गई है कि डॉ. आंबेडकर की कोशिशें निरपेक्ष होकर भी कैसे तर्क की कसौटी पर लड़खड़ाती हैं और अंततः एक व्यक्ति मनुष्य का निर्माण करती हैं।

मुख्य शब्द : डॉ. आंबेडकर, जीवन आदर्श, आत्मस्वीकारोक्ति, कसौटी

प्रत्येक सांसारिक व्यक्ति अतीत का गीत गाता है और भविष्य की चिंता करता है। कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जो भूतकाल का अवलोकन कर वर्तमान को जीते हैं। अपने अनुसार साभ्यतिक परिवर्तन लाते हैं और भविष्य को नई दिशा देते हैं। डॉ. भीमराव रामजी आंबेडकर का जीवन कुछ ऐसा ही था। उनके जीवन के कई संघर्ष हैं। उनके इन

चेयर प्रोफेसर, डॉ. आंबेडकर मानवाधिकार एवं पर्यावरणीय मूल्य पीठ, पंजाब केंद्रीय विश्वविद्यालय, घुद्दा, बठिण्डा (पंजाब)
Email : hindswaraj2009@gmail.com

संघर्षों में हमारे लिए प्रेरणा-पथ है। हमारे लिए संदेश है। हमारे जीवन के लिए उपयोगी है। हमारी पीढ़ी के लिए और आने वाली पीढ़ी के लिए भी उनके बहुमूल्य विचार हमें इस वैचारिकी के साथ खड़ा होते हैं जिससे हम अपने जीवन को सहेज सकेंगे। इसी का नाम है—आंबेडकर पथ।

महत्त्वपूर्ण यह है कि हम उनकी वैचारिकी को किस प्रकार से समझते हैं। डॉ. आंबेडकर को किस प्रकार समझते हैं। उनसे क्या सीख लेते हैं। उनकी जीवन-यात्रा में उन बिन्दुओं पर हमारा ध्यान जाता भी है या नहीं। विडम्बना यह है कि व्यावहारिक जगत में, और सैद्धांतिक रूप से हम आज इतने स्वार्थी हो गए हैं कि हमें सिर्फ अपने लाभ की पड़ी रहती है। इसलिए हम समष्टिगत बातें सोचने समझने को राजी नहीं हैं। फलतः किसी भी महापुरुष के विचार हों, आंबेडकर ही नहीं, कोई भी हम उन्हें अपने साथ जोड़ने से कतराते हैं। उनके दिखाए हुए रास्ते भी हमें बहुत बोझिल, कठिन, कुतर्क से भरा हुआ और अप्रत्याशित रूप से केवल सीख ही देने वाले लगते हैं। यदि ऐसा होता है तो भला उससे हम कितना खुद को और अपने समाज को जोड़ सकेंगे, यह सोचने वाली बात है। लेकिन एक बात तय है कि हम चाहे जितना किसी को नकार लें, उन्हें अप्रासंगिक घोषित कर दें, यदि उसने मनुष्यता के लिए रंच मात्र संघर्ष किया है, तो वह हमारे नकारने के बाद भी अपनी उपस्थिति पूरी प्रतिष्ठा के साथ अंकित करेगा। बाबासाहेब डॉ. भीमराव आंबेडकर का जीवन ही समाज के लिए संघर्ष से भरा रहा है। उन्होंने भारत की आत्मा में बसे गरीब, वंचित और उपेक्षित के लिए संघर्ष किया है। उन्होंने मौखिक, लिखित रूप से समाज को मुख्यधारा में शामिल करने का यत्न किया। उन्होंने समाज के बीच चलकर संवाद स्थापित किया। वह सैद्धांतिक और सामाजिक नेतृत्व, दोनों माध्यम से जीवन को उन्हें समर्पित किया जो अभिशप्त थे, और जिनका कोई सामाजिक आधार नहीं था।

संघर्ष के नैरेटिव

डॉ. आंबेडकर ने संघर्ष के नए प्रतिमान स्थापित किया, यह सभी जानते हैं लेकिन वे नए प्रतिमान उन्होंने कैसे स्थापित किए, क्यों किए, उसके पीछे उनकी सोच क्या थी, उनकी संवेदना क्या थी, इसे अवश्य समझना जरूरी है। कोई भी जरूरी बात करने से पहले कही गई चीजों का विश्लेषण हमें तटस्थ भाव से तो करना ही चाहिए, नैतिकता यही कहती है, लेकिन उस तटस्थता को बनाए रखने के लिए जरूरी जानकारी आवश्यक है। डॉ. आंबेडकर की सबसे अच्छी बात यह है कि वे जीवन को अध्यावसायी बनाते हैं। इसके साथ ही वह हर उन बिन्दुओं को समझने व परखने की कोशिश करते हैं जिससे

वे किसी विषय के बारे में ज्यादा तर्कशील हो सकें। वे सत्य के प्रति अपनी अभिरुचि रखते हैं। वे स्वयं को अनुशासित करते हैं। योग्य मिलने पर योग्य अनुशीलन भी करते हैं। उनके सम्पूर्ण जीवन के यात्रा वृत्तन्त को खुली आँखों और खुले दिमाग से कोई भी पढ़कर देख ले। उन्हें समझ आएगा कि वे किस कद-काठी व सोच के बने थे। इसीलिए उनके संघर्ष के नैरेटिव्स हमें उन मूल्यों की ओर ज्यादा केन्द्रित करते हैं, आकर्षित करते हैं। 24 सितंबर, 1944 को सुबह 10 बजे मद्रास के प्रभात टॉकीज में नेशनल सोसायटी में डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर का भाषण हुआ था जिसकी अध्यक्षता श्री एस. रामनाथ ने की थी। डॉ. आंबेडकर ने कहा, ''केवल राजनीतिक होने के कारण मैं साहित्य, इतिहास और दर्शन इन विषयों पर अधिकारपूर्वक नहीं बोल सकता। लेकिन साहित्य, इतिहास और दर्शन का अध्ययन कर मेरी जो राय बनी वह आज मैं आपको बताने जा रहा हूँ। उन्होंने कहा, ''हिंदुस्तान के इतिहास के बारे में गलतफहमियाँ प्रचलित हैं। कई विद्वान इतिहासकारों ने कहा है कि हिंदुस्तान में राजनीति के बारे में कोई कुछ नहीं जनता था। प्राचीन भारतीयों ने केवल दर्शन, धर्म और आध्यात्म के बारे में लिखने पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया था। इतिहास और राजनीति से वे पूरी तरह अलिप्त थे। कहा यह भी जाता है कि हिंदी जीवन और समाज, तय फौलादी घेरे में ही घूमता है और उस वर्णन के साथ-साथ इतिहासकार का काम पूरा हो जाता है। प्राचीन हिंदुस्तान के इतिहास के अध्ययन के बाद मेरी राय इन विद्वानों की राय से अलग बनी। इस अध्ययन में मैंने पाया कि दुनिया के किसी भी देश में हिंदुस्तान जैसी गतिमान राजनीति नहीं थी और शायद हिंदुस्तान ही एकमात्र ऐसा देश है जहाँ ऐसी क्रांति हुई जैसी दुनिया भर में अन्यत्र कहीं नहीं। उनके समय में भी यह संकट थे कि लोग पढ़ते नहीं थे। कहने की आदत अधिक थी। समझते नहीं थे, कहने की आदत थी। इसके पीछे के कारणों को आंबेडकर ने स्पष्ट किया और इस अभाव से बनी हानियाँ हैं उसको भी बताया है। वे बुद्धिवाद के सामाजिक ठहराव और उसकी मृत्यु तक के भी कारण उदाहरण सहित बताते हैं। आंबेडकर ने उसी सभा में कहा था, ''जो हो, आखिर राजनीति, समाज, राज्य, शासन, धर्म और बुद्धिवाद के क्षेत्रों में बुद्ध ने जो शुरुआत की थी, वह आगे चल कर नाकाम हुई। धर्म और राजनीति को एक करते हुए यह साबित करने के लिए मनुस्मृति लिखी गई कि चातुर्वर्ण्य केवल सामाजिक प्रथा नहीं, यह एक राजनीतिक दर्शन है। हमारे सामाजिक और राजनीतिक जीवन की बुनियाद बुद्धिवाद ही होनी चाहिए। हर देश में राजनीतिक नेता को कसौटी पर कसा जाता है।[2] डॉ. आंबेडकर ने जो नैरेटिव संघर्ष के लिए तैयार किया, उसमें बौद्ध धर्म से भिन्न एक अलग छवि मिलती है। यद्यपि वह बौद्ध धर्म के प्रशंसक

हैं। उसे वह अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में अपना भी लेते हैं लेकिन उन्हें जो जब अच्छा लगा, उसे वह कहने में संकोच नहीं करते, उसे उद्घाटित भी करते हैं। वह यह जानते हैं कि नैरेटिव्स भी तभी साथ देते हैं जब वह तर्क की तुला पर खरे होते हैं। हालांकि जिस महापुरुष की ओर वे कटाक्ष करते हैं, वे गांधी जी थे लेकिन उन्होंने इसके माध्यम से दो महत्त्वपूर्ण बातें कही हैं जिसे ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है, जो किसी संघर्ष के नैरेटिव्स में अपना महत्त्व भी रखते हैं। पहला यह कि हमारी दृष्टि संकुचित न हो। दूसरा, हमें सतर्क होकर अपने समय में खुद को उपस्थित करना चाहिए क्योंकि प्रश्नों की बौछारें किसी को अपना मानकर उस पर नहीं आतीं, जो अपनी मनःस्थिति को स्पष्ट नहीं करेगा, जो अपनी भूमिका को संदिग्ध बनाकर भी चालाकी से निकलना चाहेगा, इतिहास के पन्ने और आने वाली पीढ़ियाँ उनसे प्रश्न तो करेंगी ही।

जब हम उनके आंदोलनकारी व्यक्तित्व से रूबरू होते हैं, तो हमें आंबेडकर कई सवाल करते हुए स्वयं मिलते हैं। बात 20 सितंबर, 1944 की है जब 'आंबेडकर जिंदाबाद' के नारों से गूँज उठा पूरा नामपल्ली, बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर को सुना। उसका जिक्र यहाँ जरूरी है। डॉ. आंबेडकर ने कहा, 'हमारे आंदोलन का लक्ष्य क्या है? कब हम अपने आंदोलन को पूरा हुआ कह सकते हैं? हमारे समाज को और हमारे देश को आजादी मिलनी चाहिए, यही हमारा लक्ष्य है। लेकिन इस देश में कई पंथ हैं। 1. हिंदू, 2. मुलसमान, 3. ईसाई, 4. अस्पृश्य। अस्पृश्य कौन हैं? अस्पृश्य जाति हिंदुओं से अलग है। हजारों सालों से हिंदू समाज ने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक मामलों में हमें बिलकुल गुलाम बना दिया है। हम सब गुलामी के ये बंधन तोड़ना चाहते हैं। इस देश को गणतंत्र चाहिए, यह पुकार कर कहा जाता है लेकिन हिंदू समाज से मैं पूछना चाहता हूँ कि क्या अस्पृश्य समाज को टालकर क्या देश गणराज्य हो सकता है?[3] यह जो प्रश्न है, वह केवल सामान्य प्रश्न नहीं माना जा सकता क्योंकि भारत के अस्पृश्य-जन की बात हो रही है तो उनके पूरी सोशल-लीगेसी पर विचार हो रहा है। वह इसी सभा में एक और वर्ग को संबोधित करते हैं और कहते हैं कि आगे बढ़ने और महिलाओं के पिछड़ते रहने से किसी भी समाज की प्रगति नहीं हो सकती। इसीलिए अब महिलाओं को पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर लड़ना होगा। तभी हमें जल्द आज़ादी मिलेगी।[4] क्या समाज में अस्पृश्य और स्त्री के संबंध में प्रतिरोध की जो अलख बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर के मन में है, जो सवाल उनके मन में हैं, जो गुस्सा उनके मन में है और उसी समय काल में आज़ादी के पीछे की तड़प में एक अलग प्रकार की आज़ादी की खोज है, वह नए नैरेटिव्स बाबासाहेब द्वारा सृजित नहीं होते? निःसंदेह उन्होंने संघर्ष के लिए केवल अपने आपको

नहीं देखा। अपने संघर्ष के मुकाबले वह अस्पृश्य और स्त्री प्रश्नों को देखते हैं। सोच-विचार की शैली का आग्रह करते हैं, हमारा ध्यान वहीं ज्यादा जाना चाहिए।

व्यावहारिक बदलाव के आग्रही

हमारे देश में डॉ. आंबेडकर ने व्यावहारिक बदलाव की अपेक्षा की। ऐसा व्यावहारिक बदलाव जो दूरियों को कम कर दे। छुआछूत को कम कर दे। अस्पृश्य को भी जीवन जीने के लिए और अपने अधिकार पाने की स्वतंत्रता हो। वह आर्थिक स्तर पर व्यावहारिक बदलाव के पक्षधर थे। निवर्तमान राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने अपने एक संस्मरण व्याख्यान में कहा था, ''डॉ. आंबेडकर भारतीय संविधान को सामाजिक आर्थिक बदलाव के एक शक्तिशाली साधन के रूप में देखते थे और इसी इरादे से उन्होंने संविधान के प्रारूप में ऐसे अनेक प्रावधान शामिल किए जिनसे सरकार की पूर्ण ज़वाबदेही, नियंत्रण उपाय, मौलिक अधिकारों की सुरक्षा, स्वतंत्र संस्थान तथा सामाजिक लोकतंत्र की दिशा में निरंतर बढ़ने में मदद मिल सके।[5] स्थायी तौर पर व्यावहारिक बदलाव तो कानून के माध्यम से ही लाया जा सकता है। इसलिए वह आर्थिक बराबरी की राह संविधान के माध्यम से ज्यादा प्रभावशील मानते थे। यह बात अलग है कि संविधान के 75 वर्ष लागू होने के बाद भी वह आर्थिक बराबरी नहीं आ पायी जो बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर चाहते थे।

उत्पीड़न के सिद्धांत और संस्कृतियों में उनके ठहराव को लेकर डॉ. आंबेडकर ने जो भी बातें रखी उसकी जब-जब समाजशास्त्रीय व्याख्या होती है तो उसमें जो संवेदना के स्वर निकलते हैं, वे डॉ. आंबेडकर को व्यावहारिक बदलाव के पैरोकार के रूप में प्रकट करते हैं। उन्होंने गतिशील संस्कृति की संकल्पना की। रूढ़ियों को सदा निषेध करने के लिए कहा। अपनी दृष्टि को उदार करने के लिए आह्वान किया यह उनके विचारों में झलकता भी है। उस दौर में भारत की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में व्यवहृत रूढ़िगत बातें उन्हें सालती थीं। डॉ. आंबेडकर ने उन पर हमेशा अपना प्रतिरोध दर्ज़ किया और जो परम्परागत व्यवस्था को यथावत झेलने की बात करते थे उन्हें चुनौती दी। उन्हें इस कारण से डॉ. आंबेडकर सुहाते नहीं थे। ये विचार उस व्यक्ति के हैं जो सत्ताधारियों की कठपुतली नहीं रहा और जिसने महिमा की चाटुकारिता नहीं की। ये विचार उस व्यक्ति के हैं जिसकी प्रायः संपूर्ण सार्वजनिक चेष्टा गरीबों और पददलितों की मुक्ति के लिए लगातार संघर्ष करने की रही।

इसका केवल यह पुरस्कार मिला कि राष्ट्रीय पत्रिकाओं और राष्ट्रीय नेताओं ने उसकी महज इसलिए निरंतर निंदा की तथा उसके साथ दुर्व्यवहार किया कि मैं जालिमों के धन से पददलितों की मुक्ति करने और अमीरों के पैसे से गरीबों का उत्थान करने का चमत्कार—मैं इसे चाल नहीं कहूँगा—दिखने में मैं उनका साथ नहीं देता।[6] जो व्यावहारिक बात करेगा, उसकी निंदा, आलोचना और उसके प्रति कटुता के भाव आने स्वाभाविक होते हैं। बाबासाहेब डॉ. भीमराव आंबेडकर इन सभी समस्याओं से इसलिए जूझ रहे थे क्योंकि वह खुद अपनी दृष्टि और जीवनशैली को एकीकृत करके रखते थे। बनावटीपन उनमें नहीं था। कदाचित उनकी बात सबको अव्यावहारिक लगती थी क्योंकि वह समझौता नहीं करते थे। 'जाति के विनाश' पुस्तक में इसलिए उन्होंने इसका बिना भय के ज़िक्र भी किया है। वह इस बात को बहुत निर्भीकता से उद्घाटित करते हैं कि 'मनु के कानून में समानता के सिद्धांत को कभी मान्यता नहीं दी गई। असमानता, मनु के कानून की आत्मा थी। यह जीवन के सभी व्यवसायों, सभी सामाजिक संबंधों और राज्य के सभी विभागों में व्याप्त थी। इसने हवा को दूषित कर रखा था, जिसमें अछूतों के लिए साँस लेना कठिन हो गया था। कानून की नज़र में समानता के सिद्धांत ने मलिनता दूर करने का काम किया है। इसने हवा को शुद्ध किया है और अछूत आज़ादी की साँस ले सकता है। अछूतों को वास्तव में यह लाभ हुआ है और प्राचीन काल का ध्यान रखते हुए यह लाभ कम नहीं है।[7] यह निर्भीकता ही उनके व्यावहारिक पक्ष का एक दूसरा स्वरूप है जिसे वह उस समाज में प्रज्ज्वलित होते देखना चाहते थे जो वंचना के शिकार हैं। उन्होंने ठीक को ठीक कहने और गलत को गलत कहने में कोई संकोच नहीं किया। वह यह जानते थे कि इसी के माध्यम से सामाजिक बदलाव आ सकते हैं। खासकर चेतना का जो बदलाव है, वह आर्थिक और सांस्कृतिक बदलाव दोनों की आपूर्ति करता है और एक व्यक्ति मनुष्य को सशक्त बनाता है। व्यावहारिकता को जीवन का हिस्सा बनाने के पक्षधर बाबासाहेब डॉ. भीमराव आंबेडकर ने हमेशा अपने जीवन को अनुशासन में बांधकर रखा था। वे चाहते थे कि सभी अनुशासित हों। अनुशासन जीवन का सर्वोच्च गुण है, ऐसा वे मानते थे। अनुशासित न रहने पर वे कभी-कभार गुस्सा करते थे। इस संबंध में नामदेव काटकर ने 'डॉक्टर भीमराव आंबेडकर की जिंदगी के आखिरी 24 घंटों की कहानी' नामक अपने एक आलेख में लिखा है कि 'माईसाहेब ने इस बात का ज़िक्र अपनी किताब, 'डॉ. आंबेडकरांच्या सहवासात' में किया है।

उन्होंने लिखा है, 'बाबासाहेब का गुस्सा होना कोई नई बात नहीं थी। अगर उनकी कोई किताब अपनी जगह पर नहीं मिलती थी, या कलम कहीं और होता था, तो बाबासाहेब गुस्से से भड़क उठते थे। अगर उनकी इच्छा के बगैर कोई छोटा-सा काम भी हुआ, या उम्मीद के मुताबिक न हुआ, तो उनका पारा सातवें आसमान पर पहुँच जाता था... इसमें आगे लिखा गया है, 'बाबासाहब का गुस्सा तूफान की तरह था। लेकिन वो बस वक्ती-तौर पर नाराज़ होते थे। जो किताब, नोटबुक या कागज़ वो तलाश रहे होते थे, वो मिल जाता था, तो अगले ही पल उनकी नाराज़गी काफूर हो जाती थी।'[8] इस प्रकार व्यावहारिक पक्ष में अनुशासित जीवन बाबासाहेब को पसंद थे। वे चाहते थे कि सभी संयमित हों। संयम का अर्थ उनकी दृष्टि में यह है कि अपने समस्त जीवन-आचरण को अनुशासन की डोर से बाँधे रखें।

वर्चस्व का प्रतिरोध

डॉ. आंबेडकर ने 'कानून के राज्य' की बात की। वह वर्चस्ववादी बुर्जुआ सभ्यता को नकारते हैं। वह समर्थ व श्रेष्ठ मनुष्य बनने के बारे में ही हमेशा विचार करते हैं। 'आंबेडकर पथ' की अपनी निष्ठा कानून-केन्द्रित है। उन्होंने बहुत सुचिंतित विचार दास, मनुष्य और उसकी परिस्थितियों पर अभिव्यक्त किया था, यह बताना आवश्यक है कि कानून की दृष्टि में 'मनुष्य' मानव शब्द के समान है। कानून में 'मानव' हो सकते हैं किंतु कानून उन्हें 'मनुष्य' नहीं मानता। इसके विपरीत कानून में 'मनुष्य' हैं लेकिन वे 'मानव' नहीं हैं। कानून 'व्यक्ति' शब्द का जो अर्थ लगाता है, उससे यही विलक्षण परिणाम निकलता है। कानून के प्रयोजनार्थ एक 'मनुष्य' मानव अथवा गैर-मानव जैसी इकाई की तरह है जिसमें कानून के अनुसार 'अधिकार' प्राप्त करने और 'कर्त्तव्यों' का निर्वहन करने की सामर्थ्य होती है। कानून की दृष्टि में दास मनुष्य नहीं है, यद्यपि वह मानव है। वह कानून की दृष्टि में एक मूर्ति मनुष्य है, यद्यपि एक निर्जीव वस्तु है।[9] डॉ. आंबेडकर की दृष्टि में इस विभेदीकरण की राजनीति ने हमें झूठा बना दिया है और यथार्थबोध से षड्यंत्रपूर्वक हमें भ्रमित किया है। सम्यक् ज्ञान के अभाव में जी रहे व्यक्ति-मनुष्य के लिए उन्होंने सीख दी कि हमें वर्चस्व का प्रतिरोध करके ही समतामूलक समाज की सम्मानजनक सामाजिकी निर्मित करनी पड़ेगी, दूसरा कोई विकल्प नहीं है। इस वर्चस्व के प्रतिरोध में डॉ. आंबेडकर का एक अन्य स्वभाव भी हमें देखने को मिलता है जो उनके अतिरेक-सोच को प्रकट करता है। यथा उन्होंने लिखा, 'चिरंतन अस्पृश्यता का व्यवहार हिंदुओं और

अछूतों के बीच कटुता का पर्याप्त साक्ष्य है। ऐसी कटुता देखते हुए यह असंभव है कि अछूतों से कहा जाए कि वे इस बात पर विश्वास कर लें कि अंग्रेजों और स्वाधीनता मिलने के बाद हिंदू उनके साथ न्याय करेंगे। जब अछूत यह कहते हैं कि वे हिंदुओं पर विश्वास नहीं करते तो कौन कह सकता है कि यह कोई गलत कथन नहीं है। हिंदू उनके लिए उतना ही पराया है, जितना कोई यूरोपवासी, बल्कि उससे भी बदत्तर बात तो यह है कि यूरोप वाले पराए होकर तटस्थ तो हैं हिंदू तो निर्लज्जता से अपने वर्ग का पक्ष-पोषक है और अछूतों के प्रति दंभ रखता है।'[10] इस अतिरेक में जाकर डॉ. आंबेडकर का सोचना किस हद तक उनसे हमें जोड़ता है और किस हद तक नहीं, इसे आम पाठक तत्कालीन परिस्थितियों के अवलोकन के साथ समझ सकता है और उस पर उसकी अपनी राय भी विकसित हो सकती है। वर्चस्व के प्रतिरोध में किसी व्यवस्था को नकारना और किसी अतिक्रमित करने वाली व्यवस्था की प्रशंसा करना भी कदाचित उचित नहीं लगता। हाँ, डॉ. आंबेडकर ने कहा कि 'दलित युवाओं को मेरा यह पैग़ाम है कि एक तो वे शिक्षा और बुद्धि में किसी से कम न रहें, दूसरे ऐशो-आराम में न पड़कर समाज नेतृत्व करें। तीसरे, समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी संभालें तथा समाज को जागृत और संगठित कर उसकी सच्ची सेवा करें।'[11] यह उनकी ओर से मूल संदेश थे जो निःसंदेह मानवतावादी डॉ. आंबेडकर की आत्मा की आवाज़ के रूप में हमें लगता है।

आंबेडकर की स्वीकारोक्ति

दुनिया के आगे, खासकर एशिया उपमहाद्वीप के आगे, आज दो ही मार्ग हैं। एक बुद्ध का मार्ग और दूसरा मॉर्क्स का मार्ग। समय रहते दुनिया अगर बुद्ध के बताए मार्ग का अनुसरण नहीं करती है तो कम्युनिस्ट दर्शन की विजय होगी। आज दुनिया के लिए बुद्ध दर्शन का ही एकमात्र आधार बचा है। उसका जितना प्रसार होगा उतनी दुनिया युद्ध से दूर और शांति के करीब पहुँचेगी। केवल बुद्ध के विचार ही दुनिया को तबाह होने से बचा सकते हैं—डॉ. आंबेडकर के विचार[12] स्वीकारोक्ति और अस्वीकारोक्ति का अपना मनोविज्ञान है। बाबासाहेब डॉ. भीमराव आंबेडकर को बुद्ध के मध्य मार्ग ने आकर्षित किया और उन्होंने उसे अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में अपना भी लिया। उनके बौद्ध धर्म स्वीकार करने के बाद उन्हें मानने वाले अनेक भारतीय लोग बुद्ध धर्म में प्रविष्ट हुए लेकिन इसके पीछे जो उनकी मंशा थी, वह बौद्ध सिर्फ बन जाने की नहीं थी अपितु समता की संस्कृति विकसित करने की थी, इसे समझना होगा। स्वीकारोक्ति के पीछे उनके जो विचार हैं, वे सधे हुए हैं, उद्देश्यपूर्ण हैं। बिना किसी प्रायश्चित के हैं। वह चाहते हैं कि

वर्चस्व के प्रतिरोध के बाद हमें मध्यम मार्ग से आगे बढ़ना होगा और उसके माध्यम से ही हमें समतामूलक समाज की कोई आशा नज़र आती है।

वह अपनी साभ्यतिक कमियों को उजागर करने से कभी चूकते नहीं। उन्होंने अपने समाज की कमियों को भी बेधड़क कहा। एक बार उन्होंने कुछ मामूली प्रश्न को भी लोगों के सामने रखा। पोषाक जैसे मामूली विषय पर उन्होंने बात की कि इधर हमारे समाज के लोगों की पोषाक में बहुत बदलाव आए हैं, इस बात का मुझे संतोष है। हालांकि बूढ़ी औरतों के पहनावे में बदलाव होना अभी बाकी है। जंपर, पोलका जैसे नई तरह के कपड़े पहनना अगर उन्हें पसंद नहीं है तो ना पहनें, लेकिन पुराना चोली-लुगड़े साड़ी-ब्लाउज जैसी पोषाक भी पहननी हो तो उसे ढंग से पहनें।'[13] प्रायः ऐसा कोई भी पहलू जो किसी को झेंप दिलाता हो, उसे डॉ. आंबेडकर ने कभी कहना नहीं चाहा लेकिन वह यह चाहते थे कि सुसंस्कृत सामाजिकी में पहनावे भी अपनी भूमिका रखते हैं। स्वच्छता और पहनावे से कितना जीवन सुन्दर हो सकता है, उसे वह बहुत बारीकी से जानते थे। वह इसलिए ऐसा होने का आह्वान करते हैं जो उन्हें सामाजिक रूप से ही नहीं बल्कि शारीरिक सौन्दर्य के साथ प्रकट करे। आंबेडकर ने अपने आपको भी जनता के सामने रखा और जो उनके जीवन के संघर्ष नेतृत्व के लिए तैयार किया उन्होंने, उसके पीछे की कठिनाइयों को भी स्वीकार किया है। उन्होंने कहा, ''आपको लगता है नेता बनना बहुत आसान है। लेकिन मेरी मानो तो नेता बनना बहुत कठिन काम है। खुद मुझे नेता होना बहुत मुश्किल काम लगता है। मेरा नेता होना दूसरों की तरह नहीं है। जब मैंने आंदोलन छेड़ा तब किसी भी तरह का संगठन नहीं था। खुद मुझे ही सभी काम करने पड़ते थे। संगठन करना था तो मुझे ही करना पड़ता था। अखबार शुरू करना था तो वह भी मुझे ही करना पड़ा। इसीलिए, 'मूकनायक', 'बहिष्कृत भारत', 'जनता' आदि अखबार मुझे ही चलाने पड़े। प्रेस चलानी थी तब खुद मुझे ही प्रेस चलाने की सारी तैयारी करनी पड़ी। संक्षेप में, मुझे हर बात का शून्य से निर्माण करना पड़ा।''[14] इसलिए उन्होंने यह भी कहा, 'अपना संगठन मजबूत बनाना होगा। सभी आपसी मतभेदों को भुलाना होगा। एक विचार के साथ चलना होगा। क्योंकि बिना संगठन के दुनिया में हमें कोई नहीं पूछेगा। मैं जानता हूँ कि चुनाव के समय हमें और किसी से हाथ मिलाना होगा। अगर हमारा संगठन ही नहीं होगा तो कोई हमारे पास नहीं आएगा। हमें कोई नहीं पूछेगा।'[15]

निष्कर्ष

डॉ. आंबेडकर की अपने जीवन की अपनी अभिव्यंजना है जो हमें मनुष्यता के करीब ले जाती है। उन्होंने स्वान्तः सुखाय जो किया, वह किया लेकिन बहुजन हिताय ऐसे

मार्ग बताए जिससे हम पूरी सामाजिक संरचना को बदल सकते हैं। अब वैश्विक स्तर पर विभिन्न देशों में जाति व रंग को लेकर जो विभेद चल रहे हैं। नस्लभेद पर हमेशा कोई विद्रूप सी तस्वीर हमारे सामने आ जाती है। ऐसे किसी भी अधम कर्म में सन्निहित लोगों को डॉ. आंबेडकर नकारते हैं। आंबेडकर अपने लिए, और अपने जैसे मनुष्यों के लिए सद्मार्ग पर चलकर जिसमें बुद्ध के विभिन्न संदेश सन्निहित हैं, यथा—1. प्रज्ञा, 2. शील, 3. नेखम्म, 4. दान, 5. वीर्य, 6. खंति, 7. सच्च, 8. अधित्थान, 9. मैत्री, 10. उपेख्खा, उसे आत्मसात करने का आग्रह करते हैं। 'आंबेडकर पथ' भी तो यही है। 'आंबेडकर पथ' के माध्यम से हम अपने भविष्य को कैसे सृजित, परिवर्तित और समृद्धि प्रदान कर सकते हैं, डॉ. आंबेडकर ने इस पर विचार किया है। निश्चय ही, डॉ. आंबेडकर आज हमारे बीच उपस्थित नहीं हैं लेकिन उनकी प्रेरक व परिवर्तनकारी बातें हमारी प्रेरणा का स्रोत बनी रहेंगी।

संदर्भ

1. डॉ. आंबेडकर वाङ्मय, आंबेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, नई दिल्ली/संस्करण : 2020 पृष्ठ 401, जनता, 9 दिसंबर, 1944
2. डॉ. आंबेडकर वाङ्मय, आंबेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, नई दिल्ली/संस्करण : 2020 पृष्ठ 402
3. बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर संपूर्ण वाङ्मय, आंबेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, नई दिल्ली/संस्करण : 2020, पृष्ठ 393 इसे एक समग्र अम्बेडकर चरित्र : बी.सी. कांबले खंड 17, पृष्ठ 66-67 पर देखा जा सकता है।
4. बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खंड 39, पृष्ठ 393
5. आंबेडकर द्वारा परिकल्पित 21वीं सदी में भारत की संकल्पना पर डॉ. भीमराव आंबेडकर स्मृति व्याख्यान के अवसर पर भारत के राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी का अभिभाषण, विज्ञान भवन, नई दिल्ली : 04.09.2014
6. बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर 'जाति का विनाश' पुस्तक में वर्णित द्रष्टव्यः डॉ. आंबेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय, खंड : 23, पृष्ठ 1
7. डॉ. आंबेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय, खंड : 23, प्राचीन भारतीय वाणिज्य, अस्पृश्य तथा 'पेक्स ब्रिटानिका', ब्रिटिश संविधान भाषण/: 2019 (जून)/दूसरा संस्करण : 2020 (अगस्त)/डॉ. आंबेडकर प्रतिष्ठान/सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, नई दिल्ली/संस्करण:: 2020/पृष्ठ 125
8. डॉक्टर भीमराव आंबेडकर की जिंदगी के आखिरी 24 घंटों की कहानी, नामदेव काटकर, बीबीसी मराठी, 6 दिसंबर, 2022

9. डॉ. आंबेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय, खंड : 25, आंबेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, नई दिल्ली/संस्करण : 2020/पृष्ठ 72-73
10. डॉ. आंबेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय, खंड : 17, आंबेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, नई दिल्ली/संस्करण : 2020/पृष्ठ 27
11. डॉ. आंबेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय, खंड : 17, आंबेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, नई दिल्ली/संस्करण : 2020/पृष्ठ 13
12. डॉ. आंबेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय, खंड : 40, आंबेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, नई दिल्ली/संस्करण : 2020/पृष्ठ 306
13. डॉ. आंबेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय, खंड : 40, आंबेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, नई दिल्ली/संस्करण : 2020/पृष्ठ 312
14. डॉ. आंबेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय, खंड : 40, आंबेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, नई दिल्ली/संस्करण : 2020/पृष्ठ 319
15. डॉ. आंबेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय, खंड : 40/पृष्ठ 321